विवेक वैराग्य
श्लोक संग्रह
प्रकाशक
वानप्रस्थ साधक आश्रम
आर्यवन, रोजड़, जि. साबरकांठा (गुजरात)

॥ ओ३म् ॥

विवेक वैराग्य श्लोक संग्रह

ज्ञानेश्वरार्यः

एम.कॉम; दर्शनाचार्य

संस्करण : पंदरहवाँ

प्रकाशन वर्ष : कार्तिक-२०७१

नवम्बर-२०१४, मूल्य : रु. ८/-

प्रकाशक :

वानप्रस्थ साधक आश्रम

आर्य वन, रोजड़, पो. सागपुर,

जि. साबरकांठा, (गुजरात) ३८३३०७.

दूरभाष : (०२७७०) २८७४१७, २९१५५५, ९४२७०५९५५०

E-mail : vaanaprastharojad@gmail.com

Website : www.vaanaprastharojad.org

ओ३म्

वैदिक धर्म महान् है, वैदिक संस्कृति महान् है वैदिक सभ्यता महान् है, वैदिक रीति-नीति और इतिहास महान् है । प्राचीन ऋषियों, मनीषियों, कवियों ने इन वैदिक सिद्धान्तों को संस्कृत भाषा के श्लोकों में बहुत ही आकर्षक, सरस तथा यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है । इन श्लोकों की एक एक पंक्ति से निकलने वाला संदेश मनुष्य के कानों को बींधकर, मन को भेदकर हृदय पर बने हुए जन्म-जन्मान्तर के अज्ञान के संस्कारों को उखाड़कर जीवन में नई प्रेरणा, नये उत्साह तथा नई उमंग को उत्पन्न करता है । पतित, घृणित, निराश, निम्नस्तर का जीवन भी परिवर्तित होकर महान्, आदर्श, श्रद्धेय तथा अनुकरणीय बन जाता है । आओ, हम भी पवित्र आत्माओं की प्रेरक वाणी को पढ़कर अपने जीवन को महान् तथा आदर्श बनावें ।

– ज्ञानेश्वरार्यः

समर्पण प्रार्थना

हे विभो ! आनन्दसिन्धो ! मे च मेधा दीयताम् ।
यच्च दुरितं दीनबन्धो ! तच्च दूरं नीयताम् ।। हे विभो... ।
चञ्चलानि चेन्द्रियाणि मानसं मे पूयताम् ।
शरणं याचे तावकोऽहं सेवकोऽनुगृह्यताम् ।। हे विभो... ।
त्वयि च वीर्यं विद्यते यत् तच्च मयि निधीयताम् ।
या च दुर्गुणदीनता मयि सा तु शीघ्रं क्षीयताम् ।। हे विभो... ।
शौर्यं धैर्यं तैजसं च भारते चेक्रीयताम् ।
हे दयामय अयि अनादे ! प्रार्थना मम श्रूयताम् ।। हे विभो... ।

भावार्थ- हे सर्वव्यापक आनन्द के सागर प्रभुदेव ! मुझे उत्तम बुद्धि प्रदान कीजिये । हे दीनबन्धो ! मुझ में जो बुरे गुण, कर्म, स्वभाव हैं, उन्हें कृपा करके दूर कीजिये । मेरी इन्द्रियाँ और मन अत्यन्त चंचल तथा अपवित्र हैं, इनको पवित्र तथा स्थिर कीजिये । मैं आपकी शरण में आया हूँ आप दयाकर मुझ सेवक को अपने आश्रय में रख लीजिये । हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! आप में जो शक्तियाँ हैं वे मुझ में धारण कराइये तथा जो मेरे में दुर्गुण, दीनता, निर्बलता है, उसे शीघ्र ही दूर कीजिये । हे दयानिधान ! हमारे भारत देश के सभी निवासियों को शूरवीर, तेजस्वी, धैर्यशाली बनाइये । हे अनादे ! मेरी यह प्रार्थना सुनिये और मेरी कामना को शीघ्र ही पूरा कीजिये ।।

भक्ति प्रार्थना

भगवन् त्वदीयभक्तिं, स्वान्ते सदा भरेयम् ।
वेदोक्त-धर्मकार्यं, नक्तन्दिनं विधेयम् ॥१॥
सङ्गः सदा सुधिनां, सरणी च सज्जनानाम् ।
सद्भावनाश्रितोऽहं, पापात् सदा बिभेयम् ॥२॥
रोगा दहन्ति देहं, प्रबलाः शरीरमध्ये ।
ब्रह्मचर्यमौषधं च, पेयं सदा वरेण्यम् ॥३॥
बालैरमूल्यवेला, खेलासु नापनेया ।
ज्ञानं मतौ धरेयं, धर्मं सदा चरेयम् ॥४॥

हे परमपिता परमेश्वर ! मैं अपने अन्तःकरण में आपकी भक्ति (स्तुति-प्रार्थना-उपासना) सदा श्रद्धापूर्वक करता रहूँ तथा वेदों में वर्णित धार्मिक कार्यों को भी दिन रात करता रहूँ ॥१॥

आपकी कृपा से मैं सदैव धार्मिक विद्वानों का सत्संग करता रहूँ और सज्जन लोगों के मार्ग पर ही चलता रहूँ। मुझ में ऐसी भावना भरो कि मैं पाप कर्मों से सदा डरता रहूँ ॥२॥

हे प्रभो ! शरीर को अनेक (शारीरिक-मानसिक) रोग उत्पन्न होकर जला रहे हैं । इन समस्त रोगों के निवारण हेतु ब्रह्मचर्यरूपी महा-औषधि का सदा सेवन करता रहूँ, ऐसी कृपा करो ॥३॥

हे पिता ! हम आपके बालक इस अमूल्य जीवन को खेलों में ही व्यतीत न कर दें, बल्कि सदा श्रेष्ठ ज्ञान को धारण करें तथा सदा वैदिक धर्म का आचरण करते रहें, ऐसी दया हम पर करो ॥४॥

राष्ट्रप्रार्थना

दयाकर ! भक्तिविज्ञानं, पितः परमात्मन् देयम् ।
दया देया दयालुरसि, चितौ संशोधनं धेयम् ॥१॥
प्रभो ! आगच्छ ध्याने मे, वस शीघ्रं च नेत्रे मे ।
तमश्छन्ने मनस्येत्य, परमज्योतिर्न आनेयम् ॥२॥
प्रवाहय प्रेमगङ्गां त्वं, मनस्सु, प्रीतिपीयूषम् ।
मिथः संवासो हे नाथ ! वर्तनं च मया ज्ञेयम् ॥३॥
राष्ट्रहेतोर्भवेन्मरणं, प्राणत्राणञ्च राष्ट्राय ।
स्वदेशे प्राणबलिदानं, प्रदेया सद्यः शिक्षेयम् ॥४॥
सेवनं धर्ममस्माकं, सेवनं कृत्यमस्माकम् ।
प्राणदानं च धर्मार्थं, करोमीति बलं धेयम् ॥५॥

हे दयामय परमपिता परमात्मा ! मुझे भक्ति का विशेष ज्ञान प्रदान कीजिये । दया करना तो आपका स्वभाव है । अतः अपने स्वभाव के अनुसार दया कीजिए और मेरी आत्मा को पवित्र बनाइये ॥१॥ हे ईश्वर ! आप मेरे ध्यानमें प्रकट होओ तथा मेरे ज्ञानरूपी नेत्र में बस जाओ । अज्ञान से आच्छादित मन में आकर ज्ञानरूपी परम ज्योति को प्राप्त कराओ ॥२॥ हे नाथ ! हृदय में प्रेम रूपी अमृत उत्पन्न करके प्रेम की गंगा बहा दीजिये । मुझे मिल जुलकर रहना तथा उत्तम व्यवहार का ज्ञान करा दीजिये ॥३॥ हे स्वामी ! मुझे शीघ्र ही ऐसी शिक्षा प्रदान करें कि मैं राष्ट्ररक्षा के लिए प्राणों का त्याग करूँ, राष्ट्र रक्षा के लिए ही प्राणों को धारण करूँ ॥४॥ हे भगवन् ! सेवा करना हमारा धर्म हो और सेवा करना ही हमारा कर्म हो । आप मेरे अन्दर ऐसा बल धारण करे कि मैं धर्म रक्षा के लिए प्राणों का भी दान कर सकूँ ॥५॥

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी,
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः ।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्
ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद् भयं योगिनः ।।

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. १००)

भावार्थ - धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, लम्बे काल तक साथ देने वाली शान्ति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, मन का संयम जिसका भाई है, भूमि ही जिसकी शय्या है, दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हैं और ज्ञान रूपी अमृत का पान करना ही जिसका भोजन है, हे मित्र ! जिस योगी के ऐसे कुटुम्बीजन हैं, उसे संसार में किससे भय होगा ? अर्थात् किसी से भी भय नहीं होगा ।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ।।

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. ७९)

भावार्थ - जब तक यह शरीर स्वस्थ अर्थात् रोगरहित है, जब तक बुढ़ापा दूर है, जब तक सभी इन्द्रियों में शक्ति विद्यमान है और आयु बची हुई है, तभी तक बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि आत्मकल्याण के लिए महान् पुरुषार्थ करे,

अन्यथा जैसे घर में आग लग जाने पर कुआँ खोदने से कोई लाभ नहीं होता वैसे मृत्यु काल में कुछ भी नहीं हो सकेगा ।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयं,
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ।।

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. ३१)

भावार्थ - विषय भोगों में रोगों का भय है, वंश में आचार भ्रष्टता या सन्तान विच्छेद का भय है, धन में राजा का भय है, मौन रहने में दीनता का भय है, बल प्राप्त करने पर शत्रुओं का भय है, रूप-सौन्दर्य में बुढ़ापे का भय है, शास्त्र पढ़ने पर पराजित होने का भय है, गुण प्राप्त करने में दुष्टों द्वारा व्यर्थ की निन्दा का भय है, शरीर में मृत्यु का भय है, इस प्रकार पृथ्वी पर सारी वस्तुएँ भय से युक्त हैं, केवल एक वैराग्य ही निर्भय बनाने वाला है ।

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिर्
दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते ।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न सुश्रूषते,
हा ! कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ।।

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. ९७)

भावार्थ- शरीर सिकुड़कर झुक गया है, चाल धीमी और डगमगा गई है, दाँतों की पंक्तियाँ टूटकर गिर गयी हैं, आँखों से पूरा दीखता नहीं और कानों से सुनाई नहीं देता, मुँह में से लार टपकती रहती है, कुटुम्बीजन बूढ़े की बातों का आदर नहीं करते,

जीवन-संगिनी स्त्री भी सेवा नहीं करती। ओ हो! बुढ़ापा कितना कष्टपूर्ण है कि स्वयं के पाले पोसे पुत्र भी शत्रु के समान व्यवहार करने लगते हैं। फिर भी यह प्रभुशरण नहीं लेता।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं,
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. ९४)

भावार्थ - सामान्यरूप से मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मानी गई है। इसका आधा भाग अर्थात् पचास वर्ष तो सोने में ही चले जाते हैं। शेष बचा आधे का आधा भाग अर्थात् पच्चीस वर्ष, वह बाल्यावस्था और वृद्धावस्था में बीत जाता है। शेष पच्चीस वर्षका समय रोग, वियोग, आजीविका, बच्चों के लालन-पालन आदि दुःखों में बीत जाता है। जल की चञ्चल तरङ्गों के समान जीवन में मनुष्य को सुख कहाँ है ? सुख तो ईश्वरोपासना में ही है।

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. ४०)

भावार्थ - इस संसार में एक आशा नाम की नदी है। यह नदी मनोरथ-इच्छारूपी जल से भरी हुई है। इस में

तृष्णालोभ रूपी तरङ्गे उठ रही हैं। यह राग-द्वेष रूपी मगरमच्छों से परिपूर्ण है तथा तर्क-वितर्क रूपी जल पक्षी इस में तैर रहे हैं। धैर्यरूपी वृक्षों को उखाड़ने वाली इस नदी में अज्ञान रूपी भँवर उठ रहे हैं। इस नदी के दोनों किनारों पर ऊँचे-ऊँचे चिन्ता रूपी तट हैं। इस नदी को पार करना बहुत कठिन है, परन्तु इस नदी को शुद्ध अन्तःकरण वाले त्यागी, तपस्वी, विरक्त योगी पार करके बन्धनों से छूटकर ब्रह्मानन्द को भोगते हैं।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवनं,
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते ।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते,
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. ७)

भावार्थ - सूर्य नारायण के उदय और अस्त होने के साथ-साथ प्रतिदिन आयु भी घटती जा रही है और इसी प्रकार दिन, सप्ताह, पक्ष, मास और वर्ष पर वर्ष बीतते जा रहे हैं, किन्तु सांसारिक कार्यों में निमग्न मनुष्य को समय के व्यतीत होने का कोई भी ज्ञान नहीं हो रहा। जन्म, बुढ़ापा, रोग, कष्ट और मृत्यु आदि भयंकर दुःखों को देखकर कोई भय उत्पन्न नहीं हो रहा, इससे ऐसा लगता है कि सारा संसार (-प्राणी जगत्) मोह-अज्ञान रूपी मदिरा को पीकर मतवाला हो रहा है अर्थात् सब कुछ देख सुनकर भी जीवन के लक्ष्य के प्रति असावधान एवं पुरूषार्थ हीन है।

भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भवस्
तत्कस्येह कृतं परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः ।
आशापाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां,
कामोत्पत्तिवशात् स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः ।।

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. ८९)

भावार्थ - संसार के ये नाना प्रकार के विषय भोग क्षणिक सुख देकर नष्ट होने वाले हैं और जन्म-मृत्यु-रूप बन्धन के भी कारण हैं। अरे मनुष्यो ! इन तुच्छ कार्यों के करने से क्या लाभ होगा ? अर्थात् इस कर्म भोग के चक्र में पड़ने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा। यदि हमारी बातों पर विश्वास और श्रद्धा हो, तो सांसारिक आशा पाशों को तोड़कर मन को शुद्ध बनाते हुए, तीव्र इच्छा के साथ अपने मन को परमात्मा में स्थिर करो।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः,
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः,
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ।।

(भर्तृहरिकृत - नीतिशतक, श्लो. ५१)

भावार्थ - मनुष्य के जीवन में यदि लोभवृत्ति विद्यमान है, तो अन्य दुर्गुणों को ढूँढने की क्या आवश्यकता है, यदि चुगलखोरी है, तो अन्य दोषों की गणना क्या करनी ? यदि सत्य है, तो तपस्या का क्या प्रयोजन ? यदि मन पवित्र है, तो तीर्थ में घूमने से क्या लाभ ? यदि सज्जनता है, तो अन्य गुणों की क्या आवश्यकता है ? यदि यश फैल रहा है, तो आभूषणों से

क्या प्रयोजन ? यदि उत्तम विद्या है, तो धन की क्या आवश्यकता है ? और यदि अपयश है, तो फिर मृत्यु की क्या आवश्यक्ता है ?

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः,
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः ।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा काऽनुव्रता किं धनं,
विद्या किं सुखमप्रवास गमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ।।

(भर्तृहरिकृत - नीतिशतक श्लो. ९५)

भावार्थ - लाभ क्या है ? श्रेष्ठ पुरूषों का संग। दुःख क्या है ? मूर्खों का संग। हानि क्या है ? समय की बरबादी या अवसर को खो देना। चतुराई क्या है ? धर्म के रहस्यों में लगे रहना। वीर कौन है ? इन्द्रियों का विजेता। उत्तम स्त्री कौन सी है ? पति की आज्ञा के अनुकूल चलने वाली। धन क्या है ? विद्या। सुख क्या है ? विदेश में न रहना। राज्य उत्तम कौन-सा है ? जिसमें आज्ञाओं का पालन हो।

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालनात्,
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्,
मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ।।

(भर्तृहरिकृत - नीतिशतक, श्लो. ३८)

भावार्थ - गलत सम्मति मानने से राजा, अधिक मेल जोल से योगी, लाड़ प्यार से पुत्र, अध्ययन न करने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, दुष्टों के संग से शील, मद्यपान से लज्जा, देखभाल

न करने से खेती, विदेश में अधिक रहने से प्रेम, स्नेह न होने से मैत्री, अनीति से ऐश्वर्य तथा अन्धाधुन्ध व्यय करने से धन नष्ट हो जाता है ।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता,
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ।।

(भर्तृहरिकृत – नीतिशतक, श्लो. १९)

भावार्थ – विद्या मनुष्य की शोभा है, विद्या ही मनुष्य का अत्यन्त गुप्त धन है । विद्या भोग्य पदार्थ, यश और सुख देने वाली है । विद्या गुरुओं का भी गुरु है । विदेश यात्रा में विद्या कुटुम्बीजनों और मित्रों के समान सहायक होती है । विद्या ही सबसे बड़ा देवता है । विद्यायुक्त मनुष्य का ही राजाओं और राज-सभाओं में आदर-सम्मान होता है, धन का नहीं । वास्तव में देखा जाये तो विद्याहीन मनुष्य पशु के तुल्य ही है ।

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ।।

(भर्तृहरिकृत – नीतिशतक, श्लो. १९)

भावार्थ – चन्द्रमा के समान चमचमाते हुए हीरे मोती से बने आभूषण, जो हाथों में और गले में धारण किये जाते हैं, वे मनुष्य को शोभायमान नहीं करते, और न ही स्नान, तैल, इत्र, पुष्पादि से

किया हुआ श्रृंगार तथा सजाये-सँवारे हुए बाल मनुष्य को भूषित करते हैं । मनुष्य का सच्चा आभूषण तो शुद्ध, सरल, सत्य, सुमधुर वाणी ही है । अन्य सभी आभूषण तो धीरे-धीरे काल-क्रम से नष्ट हो जाते हैं, परन्तु वाणी रूपी सच्चा आभूषण सदैव जगमगाता रहता है ।

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ।।

(भर्तृहरिकृत – नीतिशतक, श्लो. ७९)

भावार्थ – संसार में वे मनुष्य 'सत्पुरुष' हैं, जो अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरों की भलाई के लिए अपने तन-मन-धन को लगा देते हैं । दूसरे प्रकार के मनुष्य 'सामान्य' कहलाते हैं जो अपने काम न बिगाड़ते हुए दूसरों की भी भलाई करते हैं । तीसरे प्रकार के मनुष्य 'राक्षस' कहलाते हैं जो अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए दूसरों के बने बनाये काम को बिगाड़ देते हैं । परन्तु जो लोग बिना किसी स्वार्थ के (अपने लाभ के) व्यर्थ ही दूसरों की हानि करते हैं, ऐसे चौथे प्रकार के मनुष्यों को किस नाम से पुकारा जाय हम नहीं जानते, आप स्वयं ही सोचें ।।

कौपीनं शतखण्डजर्ज्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी,
नैश्चिन्त्यं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं निद्रा श्मशाने वने ।
मित्रामित्रसमानतातिविमला चिन्ताऽथ शून्यालये,
ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ।।

(भर्तृहरिकृत – वैराग्यशतक, श्लो. ८८)

भावार्थ – जिसकी फटी पुरानी लंगोटी में अनेक पैबन्द लगे हैं और गुदड़ी भी ऐसी ही है। जो चिन्ता से रहित है तथा भिक्षा से प्राप्त अन्न को खाकर सुखपूर्वक निर्वाह करता है। श्मशान में या वन में निश्चिंत होकर सो जाता है। जो मित्र और शत्रुओं के प्रति समान दृष्टि रखता है तथा एकान्त स्थान में राग द्वेष से रहित होकर ईश्वर का चिन्तन करता है। जिसके अभिमान और प्रमाद आदि दोष पूर्णतया नष्ट हो चुके हैं, ऐसा योगी ही संसार में सुख पूर्वक रहता है।

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः,
सोढा दुःसहशीततापपवन-क्लेशा न तप्तं तपः ।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैः न शम्भोः पदम्,
तत्तत् कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चितम् ॥

(भर्तृहरिकृत – वैराग्यशतक, श्लो. ८)

भावार्थ – क्षमा किया, किन्तु असमर्थता के कारण; गृहसुख त्यागा, किन्तु विवशता से; सर्दी, गर्मी, आँधी आदि के अतिकष्ट सहे, किन्तु धनोपार्जन-आजीविका के लिए, तपस्या के लिए नहीं; प्राणों को वश में करके धन का तो चिन्तन किया, किन्तु कल्याणकारी शिव का ध्यान नहीं किया। इस प्रकार मुनिजन जो कर्म करते हैं, वे सब हमने किये, किन्तु मुनियों को प्राप्त होने वाले फलों से हम वञ्चित ही रहे।

अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपमं यौवनम्,
आयुष्यं जल-लोल-बिन्दु-चपलं फेनोपमं जीवनम् ।
धर्मं यो न करोति निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनम्,
पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते ॥

(हितोपदेश मित्र. १५३)

भावार्थ – धन तो पैरों की धूलि के समान है, यौवन पहाड़ी नदी के वेग के समान है, आयु पानी के प्रवाह के समान है, और जीवन फेन (झाग) के समान है, ऐसा जानते हुए भी जो मूर्ख स्वर्गद्वार को खोलनेवाला धर्माचरण नहीं करता, वह पीछे बुढ़ापे में शोक रूपी अग्नि में पश्चात्ताप करता हुआ जलता है।

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः,
किं वा तत्त्वविवेकपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ।
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनैर्,
न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥

(भर्तृहरिकृत – वैराग्यशतक, श्लो. ५१)

भावार्थ – 'यह चाण्डाल है, अथवा ब्राह्मण है?' शूद्र है, या कोई तपस्वी है? कोई चतुर बुद्धिमान् तत्त्ववेत्ता है, या योगीश्वर है, अथवा कोई धूर्त है? इस प्रकार विभिन्न प्रकार के तर्क वितर्क करने वाले व्यक्तियों पर योगी लोग न तो क्रोध करते हैं और न ही हर्षित होते हैं, किन्तु अपने अध्यात्म मार्ग पर स्वतंत्रतापूर्वक चलते रहते हैं।

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः,
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ।
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं,
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ।।

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. ७३)

भावार्थ - वेदों, स्मृतियों, पुराणों तथा अन्य बड़े बड़े शास्त्रों को केवल पढ़ते-पढ़ाते रहने से तथा विभिन्न कर्म काण्डों को करते रहने से स्वर्ग में एक अच्छा घर व भोग्य साधन मिल जाने के अतिरिक्त और क्या विशेष लाभ है ? मनुष्य का मुख्य कार्य तो ईश्वर के आनन्द को प्राप्त करने के लिए हृदयरूपी गुहा में प्रवेश करके समाधि लगाना ही है, जो संसार के समस्त दुःखों के कारण (=अविद्या) को जला देने के लिए अग्नि का काम करता है । और सब कार्य तो बनियों के व्यापार के समान है ।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः, तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. १२)

भावार्थ - हम सांसारिक विषय भोगों का उपभोग नहीं कर पाये, अपितु उन भोगों को प्राप्त करने की चिन्ता ने हम को भोग लिया । हमने तप नहीं किया, बल्कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ताप हम को ही जीवन-भर तपाते रहे । भोगों को भोगते-भोगते हम काल को नहीं काट पाये, प्रत्युत काल ने हम

को ही नष्ट कर दिया । इसी प्रकार भोगों को प्राप्त करने स्वरूप तृष्णा तो बूढ़ी नहीं हुई अपितु हम ही बूढ़े हो गये ।

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।

(भर्तृहरिकृत - नीतिशतक, श्लो. १२)

भावार्थ - जिन मनुष्यो में न कोई विद्या है, न विद्या प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं, न दान की प्रवृत्ति है, न ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा है, न सरल स्वभाव है, न जीवन में और कोई उत्तम-उत्तम गुण हैं, न धर्मयुक्त व्यवहार करते हैं । ऐसे मनुष्य तो धरती पर भार बनकर पशु-समान खाते-पीते हुए जीवन को नष्ट कर रहे हैं ।

कुरङ्ग-मातङ्ग-पतङ्ग-भृङ्ग-, मीना हता पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यात्, यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ।।

भावार्थ - हरिण 'शब्द' विषय में फँसकर अपने प्राण गँवा देता है । हाथी 'स्पर्श' विषय का दास बनकर बन्धन को प्राप्त होता है । पतङ्गा 'रूप' विषय पर मोहित होकर जल जाता है । भौरा 'गन्ध' विषय में मस्त होकर मृत्यु को प्राप्त होता है । मछली 'रस' के वशीभूत होकर काँटे में फँस जाती है । फिर भला इन पाँचों विषयों को स्वच्छन्द होकर भोगने वाले इस मनुष्य का अमूल्य जीवन नष्ट होने से कैसे बच सकता है ? कैसे भी नहीं ।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदं शरीरम् ।।

भावार्थ - संसार में जितने भी वृक्ष, वनस्पति, लताएँ हैं.

वे सभी परोपकार के लिए अपना सर्वस्व लगाये हुए हैं., पृथ्वी की छाती पर बहने वाली सभी नदियाँ, झरने, तालाब आदि परोपकार के लिए ही समर्पित हैं। गाय, भेड़, बकरी आदि पशु भी परोपकार के लिए जीवन लगाए हुए हैं। विद्वान् विरक्त, सन्त, योगी भी संसार के कल्याणार्थ तन, मन, धन को न्योछावर करते हैं इसलिए हे मानव ! तू भी परोपकारी बन।

आहार निद्रा भय मैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।।

भावार्थ – भोजन करना, नींद लेना, भयभीत होना तथा सन्तान पैदा करना, ये सब क्रियाएँ तो मनुष्यों में पशुओं के समान पायी जाती हैं। मनुष्यों में धर्माचरण ही एक ऐसा कार्य है, जो उनको पशुओं से अलग करता है। अतः जो मनुष्य शरीर धारण करके धर्माचरण नहीं करता, वह तो पशु-समान ही होता है।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, भार्या गृहद्वारि जनः श्मशाने ।
देहश्चितायां परलोकमार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ।।

भावार्थ – मनुष्य जब मरता है तब सारी धन-सम्पत्ति पृथ्वी पर ही पड़ी रह जाती है, पशु बाड़े में खड़े रहते हैं, जीवन-साथी (पत्नी या पति) घर के दरवाजे तक साथ देता है, मित्रबन्धु-सम्बन्धी श्मशान तक साथ चलते हैं और यह शरीर चिता पर जलकर भस्म हो जाता है। यदि जीवात्मा के साथ परलोक में कोई चलता है, तो वह कर्म ही है, जो उसने जीवित रहते हुए अच्छा-बुरा किया है, और कोई साथ नहीं चलता।

मालिनी छन्दः

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या,
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ।।

(भर्तृहरिकृत – नीतिशतक, श्लो. ४५)

भावार्थ – मुनि राजा से कहता है कि हे राजन्! हम वृक्षों की छाल से बने वस्त्रों को पहिन कर सन्तुष्ट हैं और तुम सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात आदि लक्ष्मी को प्राप्त करके सन्तुष्ट हो। इस प्रकार हम दोनों का सन्तोष तो समान ही है, सन्तोष में कोई भेद नहीं है। संसार में दरिद्र तो वह व्यक्ति होता है जिसकी तृष्णाएँ बहुत होती हैं। मन के सन्तुष्ट होने पर कौन निर्धन है और कौन धनवान्?

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे,
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः ।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां,
न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम् ।।

भावार्थ : सूर्य चाहे पूर्व की अपेक्षा पश्चिम दिशा में उदय क्यों न हो, पर्वत चाहे चलने क्यों न लग जावे, अग्नि चाहे ठण्डी क्यों न हो जाये, कमल चाहे पर्वत की कठोर शिला पर क्यों न खिल जाये, किन्तु जो सज्जन लोग हैं वे अपनी प्रतिज्ञा को, अपने दिये हुए वचन को नहीं बदलते, उस पर दृढ़ रहते हैं।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्,

त्रिभुवनमुपकार-श्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।

परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं,

निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।

(भर्तृहरिकृत - नीतिशतक, श्लो. ७४)

भावार्थ - मन, वचन और शरीर के द्वारा प्राणिमात्र का कल्याण करने की भावना से युक्त हुए, शुभकर्मों से तीनों लोकों का उपकार करके सबको तृप्त करने वाले तथा दूसरों के छोटे छोटे गुणों को भी पर्वत के समान बड़ा मान कर अपने हृदय में प्रसन्न होने वाले महात्मा संसार में कितने हैं ? अर्थात् बहुत कम हैं ।

मन्दाक्रान्ता छन्दः

गङ्गातीरे हिमगिरिशिला-बद्धपद्मासनस्य,

ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ।

किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः,

कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वाङ्गमङ्गे मदीये ।।

(भर्तृहरिकृत - नीतिशतक, श्लो. ३७)

भावार्थ - (प्राचीन काल में लोगों का जीवन, लक्ष्य तथा चिन्तन आज से सर्वथा भिन्न होता था । उस समय व्यक्ति विचारता था कि) मेरे ऐसे सुदिनों से बढ़कर और क्या दिन होंगे, जब मैं गंगा के किनारे, हिमालय पर्वत की किसी शिला पर, पद्मासन लगाकर, योग की क्रियाओं के अनुष्ठानपूर्वक ब्रह्म के

स्वरूप का ध्यान करते हुए समाधि में लीन हो जाऊँगा और बूढ़े हिरण निर्भयतापूर्वक मेरे शरीर से अपने शरीर को खुजाने का आनन्द लेंगे ।

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारु गन्धं,

छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुदण्डम् ।

दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं,

प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ।।

भावार्थ - चन्दन को ज्यों-ज्यों घिसेंगे, त्यों-त्यों वह मधुर सुगन्ध प्रदान करेगा । ईख (गन्ने) को ज्यों-ज्यों पेलेंगे, त्यों त्यों वह अधिक मीठा रस देगा । सोने को ज्यों-ज्यों तपायेंगे, त्यों त्यों वह और अधिक चमकता जायेगा । ठीक ऐसे ही जो महान् आत्माएँ हैं, उनको कोई कितना ही अपमानित करे, पीड़ा दे, बाधा पहुँचावे, वे अपने सत्य, न्याय, परोपकार, प्रसन्नता, नम्रता एवं प्रेम युक्त स्वभाव को कभी भी नहीं छोडते हैं, चाहे प्राण भी क्यों न चले जावें ।

वसन्ततिलका छन्दः

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,

लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।

(भर्तृहरिकृत - नीतिशतक, श्लो. ७९)

भावार्थ – नीति में निपुण व्यक्ति चाहे निन्दा करे या प्रशंसा, धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति हो या जो पास में हो वह भी चला जावे, आज ही मृत्यु हो जाए या लम्बे काल तक जीवन बना रहे, किन्तु जो धीर व्यक्ति हैं, वे सत्य, न्याय, आदर्श के मार्ग से एक कदम भी इधर-उधर नहीं हटते, प्रसन्न होकर कष्टों को सहन करते हुए दृढ़ता से उसी मार्ग पर चलते रहते हैं ।

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः,
केचित् प्रचण्ड-मृगराज-वधेऽपि दक्षाः ।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ।।

(भर्तृहरिकृत – श्रृङ्गारशतक, श्लो. ५८)

भावार्थ – मैं मानता हूँ कि संसार में, उन्मत्त हाथियों के सिर को फोड़ने वाले वीर बहुत बड़ी संख्या में हैं । क्रोध से भरे हुए अत्यन्त उग्र सिंहों को देखते ही चुटकी में मार डालने वाले वीर भी बहुत हैं, किन्तु मैं ऐसे बलवानों के सामने साहसपूर्वक कहता हूँ कि काम वासना की प्रबल ज्वाला को रोककर, इन्द्रियजित वीर उनमें कोई विरला ही मनुष्य होगा ।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ।।

(भर्तृहरिकृत – नीतिशतक, श्लो. २७)

भावार्थ – नीच अधम श्रेणी के मनुष्य कठिनाईयों के भय

से किसी उत्तम कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते । मध्यम श्रेणी के मनुष्य कार्यों को प्रारम्भ करके विघ्नों से घबराकर बीच में ही छोड़ देते हैं; परन्तु उत्तम श्रेणी के वीर मनुष्य विघ्न बाधाओं से बार-बार पीड़ित होने पर भी प्रारंभ किये हुए उत्तम कार्य को पूरा किये बिना नहीं छोड़ते ।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो,
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ।।

(भर्तृहरिकृत – वैराग्य शतक, श्लो. ९६)

भावार्थ – शेरनी के समान भयभीत करने वाला बुढ़ापा सामने खड़ा है, अनेक प्रकार के रोग शत्रुओं के समान शरीर पर आक्रमण कर रहे हैं, और फूटे हुए घड़े में से जैसे निरन्तर पानी रिसता रहता है, वैसे ही आयु क्षीण होती जा रही है, अहो ! कितने आश्चर्य की बात है कि लोग फिर भी पाप कर्मों में लगे हुए हैं !

भिक्षाऽशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ।
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमयी च कन्था,
हा-हा तदपि विषयान्न परित्यजन्ति ।।

(भर्तृहरिकृत – वैराग्यशतक, श्लो. १८)

भावार्थ – भिक्षा का भोजन है, वह भी रूखा-सूखा तथा दिनभर में केवल एक बार; सोने के लिए भूमि का बिछौना है,

अपने शरीर के अतिरिक्त कोई सहायक नहीं है। पहनने ओढ़ने के लिए वस्त्र के रूप में केवल फटी पुरानी गुदड़ी है, जिसमें सैकड़ों पैबन्द लगे हुए हैं। ऐसी दयनीय स्थिति में भी भोग की अभिलाषाएँ पीछा नहीं छोडतीं। शोक ! महाशोक !

शिखरिणी छन्दः

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किञ्चित् किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।।

(भर्तृहरिकृत - नीतिशतक, श्लो. ७)

भावार्थ - जब मैं बहुत थोड़ा जानता था तब मदोन्मत्त हाथी की भाँति घमण्ड से अन्धा हो गया था और अपने मन में यह समझता था कि "मैं सब कुछ जानता हूँ", परन्तु जब बुद्धिमानों की संगति से कुछ-कुछ ज्ञान हुआ, तब पता चला कि "मैं तो मूर्ख हूँ", उस समय मेरा अभिमान ज्वर की भाँति उतर गया।

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ।।

(भर्तृहरिकृत - नीतिशतक, श्लो. ७७)

भावार्थ - कभी सुन्दर शय्याओं पर शयन करते हैं तो कभी

भूमि पर ही सो जाते हैं। कभी अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट पकवानों का आनन्द लेते हैं तो कभी शाक-पात खाकर ही निर्वाह कर लेते हैं। कभी सुन्दर वस्त्रों को धारण करते हैं, तो कभी गुदड़ी से ही शरीर को ढक लेते हैं। विचारशील-विवेकी व्यक्ति अपने लक्ष्य की ओर ही दृष्टि रखे होते हैं, मार्ग में आने वाले सुख-दुःख की परवाह नहीं किया करते।

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता,
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरति वनिता सङ्गमुदितः,
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ।।

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. ७१)

भावार्थ - मुनियों के लिए भूमि ही रमणीय शय्या है, अपनी भुजा ही तकिया है, आकाश ही उनकी चादर है, अनुकूल वायु ही उनका पंखा है, चन्द्रमा ही प्रकाशमान दीपक है, विरक्ति ही उनकी स्त्री है। इन सामानों के साथ ही मुनिजन, ऐश्वर्यशाली राजा के समान सुखपूर्वक शयन करते हैं।

अजानन् दाहार्तिं पतति शलभो दीपदहने,
स मीनोप्यज्ञानाद् बडिशयुतमश्नाति पिशितम् ।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्,
न मुञ्चामः कामानहह ! गहनो मोहमहिमा ।।

(भर्तृहरिकृत - वैराग्यशतक, श्लो. २०)

भावार्थ - अग्नि के जलाने वाले स्वभाव को न जानता हुआ ही पतंगा दीपक पर गिर कर अपने प्राण गँवा देता है, मूर्ख

मछली भी मांस से लिपटे काँटे को निगल कर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। किन्तु मनुष्य तो जानते हुए भी विपत्तियों से युक्त विषय जाल को नहीं छोड़ते। अहो! मोह की महिमा महान् है। अर्थात् अविद्या का प्रभाव कितना अधिक है!

अनुष्टुप् छन्दः

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। (मनु. ६-१२)

भावार्थ – धैर्य रखना, सहनशील होना, मन को अधर्म से रोकना, चोरी-त्याग, रागद्वेष न करना, इन्द्रियों को धर्म में चलाना, बुद्धि बढ़ाना, विद्वान् बनना, सत्याचरण एवं क्रोध न करना ये दश धर्म के लक्षण हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

(मुण्डकोपनिषद् २-१-१८)

भावार्थ – ईश्वर का साक्षात्कार होने पर आत्मा की अविद्या नष्ट हो जाती है। सारे संशय मिट जाते हैं और सारे कुसंस्कारों का नाश हो जाता है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।

क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

(गीता. २-६२, ६३)

भावार्थ – विषयों का ध्यान करने से ध्येय वस्तु में आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से उस वस्तु को प्राप्त करने की कामना उत्पन्न होती है। कामना की पूर्ति न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध होने पर 'परिणाम क्या होगा' यह विवेक नहीं रहता। विवेक खो जाने पर स्मृति भी नष्ट हो जाती है। स्मृति के नष्ट होने पर मनुष्य बुद्धिहीन बन जाता है और बुद्धि के नाश होने पर मनुष्य-मनुष्य नहीं रहता।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।

(कठोपनिषद् १-३-३, ४)

भावार्थ – आत्मा रथ का स्वामी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, और रूपादि विषय इन्द्रियों के मार्ग हैं। जब आत्मा-मन तथा इन्द्रियों के साथ संयुक्त होकर विषयों का सुखपूर्वक सेवन करता है, तब 'भोक्ता' होता है, ऐसा विद्वान् लोग बताते हैं।

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।।

(हितोपदेश मित्रलाभः १०१)

भावार्थ – बुरे मनुष्य के मन में कुछ और होता है, वाणी से कुछ बोलता है और शरीर से करता कुछ और ही है । किन्तु अच्छे मनुष्य, जैसा मन में होता है, वैसा ही वाणी से बोलते हैं, जैसा वाणी से बोलते हैं, वैसा ही शरीर से करते हैं ।

अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत् कदर्यं दानेन सत्येनानृतवादिनम् ॥

भावार्थ – क्रोधी मनुष्य को प्रेम से जीते, दुष्ट मनुष्य को उपकार से=साधुता से, कंजूस व्यक्ति को दान से जीते तथा झूठे व्यक्ति को सत्य से जीते=अपना बनावे, ये सत्पुरुषों के लक्षण हैं ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

(महाभारत आदिपर्व. ७५-५०)

भावार्थ – विषय-वासनाएँ विषयों को भोगने से नष्ट नहीं होतीं, बल्कि और अधिक बढ़ती हैं, जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि और अधिक बढ़ती है ।

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः ।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिति ।

(शारङ्गधर संहिता)

भावार्थ – मनुष्य को चाहिए, वह प्रत्येक दिन **आत्मनिरीक्षण** करके पता लगावे कि मेरा जीवन पशुओं के समान केवल खाने-पीने में ही व्यतीत हो रहा है या सत्पुरुषों के समान उत्तम-उत्तम कार्यों में लग रहा है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ (गीता २-२३)

भावार्थ – इस शरीर के प्रयोक्ता जीवात्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकती ।

स्थानाद्बीजादुपष्टम्भान्निःस्यन्दान्निधनादपि ।
कायमाधेयशौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिं विदुः ॥

(योगदर्शन, व्यासभाष्य, २-५)

भावार्थ – गर्भाशय में उत्पन्न होने से, रजवीर्य से बना होने से, खाये हुए पदार्थों से निर्माण होने से, हर क्षण मल निकलता रहने से, मृत्यु होने पर अपवित्र हो जाने से तथा हर समय शुद्धि की अपेक्षा रहने के कारण इस शरीर को बुद्धिमान् लोग अपवित्र बताते हैं ।

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व १७४-१४)

भावार्थ – जो उत्तम कार्य करना हो, वह आज ही कर डालो, कहीं ऐसा न हो कि काल तुम्हें निगल जाय । मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि तुमने कोई कार्य पूरा किया है या नहीं ।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

भावार्थ – शरीर नित्य रहने वाले नहीं हैं, धन सम्पदा भी अनित्य है और मृत्यु हर समय सिर पर मँडराती रहती है, इसलिए शीघ्र ही धर्म-संग्रह करना चाहिए ।

षड्दोषाः पुरूषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ।।

भावार्थ – किसी भी प्रकार की धन सम्पत्ति प्राप्त करने की इच्छा वाले मनुष्य को चाहिए कि वह अधिक नींद, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य तथा काम को देरी से करने की प्रवृत्ति को छोड़ दे ।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति क्रोधसमो वह्निः पाशो लोभसमो न च ।।

भावार्थ – कामवासना के समान दुःखदायी रोग नहीं, मोह के सामने भयंकर शत्रु नहीं, क्रोध के समान अग्नि नहीं तथा लोभ के समान और कोई बन्धन नहीं है ।

संगठन सूक्त

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ।।२।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति ।।४।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।३।।
सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ।।१।।

(ऋग्वेद १०-१९१)

प्रेम से मिलकर चलो, बोलो सभी ज्ञानी बनो ।।
पूर्वजों की भाँति तुम, कर्त्तव्य के मानी बनो ।।
हों सभी के दिल तथा, संकल्प अविरोधी सदा ।
मन भरे हों प्रेम से, जिससे बढ़े सुख सम्पदा ।।
हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों ।
ज्ञान देता हूँ बराबर, भोग्य पा सब नेक हों ।।
हे प्रभो तुम शक्ति शाली, हो बनाते सृष्टि को ।
वेद सब गाते तुम्हें हैं. कीजिये धन वृष्टि को ।।

ऋषियों का संदेश

(१) विषयों को भोगकर, इन्द्रियों की तृष्णा को समाप्त करनेवाला तुम्हारा विचार ऐसा ही है, जैसा कि आग को बुझाने के लिए, उसमें घी डालना ।

(२) यह मानना तुम्हारा सबसे बड़ा अज्ञान है कि "मैं कभी मरूँगा नहीं, "यह शरीर बहुत पवित्र हैं", "विषय भोगों में पूर्ण और स्थायी सुख हैं", तथा "यह देह ही आत्मा है"।

(३) तुम्हारे मन में अच्छे या बुरे विचार अपने आप नहीं आते । इन विचारों को तुम अपनी इच्छा से ही उत्पन्न करते हो, क्योंकि मन तो यन्त्र के समान जड़ वस्तु है, उसका चालक आत्मा है ।

(४) किसी के अच्छे या बुरे कर्म का फल तत्काल प्राप्त होता न देख कर तुम यह मत विचारो कि इन कर्मों का फल आगे नहीं मिलेगा । कर्म – फल से कोई भी बच नहीं सकता, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा न्यायकारी है ।

(५) संसार (=प्रकृति), संसार को भोगनेवाला (=जीव) तथा संसार को बनाने वाले (= ईश्वर) के वास्तविक स्वरूप को जानकर ही तुम्हारे समस्त दुःख, भय, चिन्ताएँ समाप्त हो सकती है

और कोई उपाय नहीं है।

(६) "मनुष्य जीवन ईश्वर प्राप्ति के लिए मिला है" इस मुख्य लक्ष्य को छोड़कर अन्य किसी भी कार्य को प्राथमिकता मत दो, नहीं तो तुम्हारा जीवन चन्दन के वन को कोयला बनाकर नष्ट करने के समान ही है।

(७) तुम्हारे जीवन की सफलता तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि अविद्या के कुसंस्कारों को नष्ट करने में ही है। यही, समस्त दुःखों से छूटने का श्रेष्ठ उपाय है।

(८) जब तक तुम संसार के सुखों के पीछे छिपे हुए दुःखों को समझ नहीं लोगे, तब तक वैराग्य उत्पन्न नहीं होगा। बिना वैराग्य के चंचल मन एकाग्र नहीं होगा, एकाग्रता के बिना समाधि नहीं लगेगी, समाधि के बिना ईश्वर का दर्शन नहीं होगा, बिना ईश्वर-दर्शन के अज्ञान का नाश नहीं होगा और अज्ञान का नाश हुए बिना दुःखों की समाप्ति और पूर्ण तथा स्थायी सुख (=मुक्ति) की प्राप्ति नहीं होगी।

(९) तुम इस सत्य को समझ लो कि 'अज्ञानी मनुष्य ही जड़ वस्तुओं (=भूमि, भवन, सोना, चाँदी) तथा चेतन वस्तुओं (=पति, पत्नी, पुत्र, मित्र आदि) को अपनी आत्मा का एक भाग मानकर, इनकी वृद्धि होने पर प्रसन्न तथा हानि होने पर दुःखी होता है।'

(१०) तुम्हारे लोहे रूपी मन को, विषयभोग रूपी चुम्बक सदा अपनी और खींचते रहते हैं। ज्ञानी मनुष्य विषय भोगों से होने वाली हानियों का अनुमान लगाकर इनमें आसक्त नही होते, किन्तु अज्ञानी मनुष्य इनमें फँसकर नष्ट हो जाते है।

(११) महान् ज्ञान, बल, आनन्द आदि गुणों का भण्डार, ईश्वर एक चेतन वस्तु है, जो अनादिकाल से तुम्हारे साथ है, न कभी वह अलग हुआ, न कभी होगा। उसी संसार के बनानेवाले, पालन करनेवाले, सबके रक्षक, निराकार ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना तुम सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिए।

वानप्रस्थ साधक आश्रम से प्रकाशित पुस्तक-पुस्तिकाएँ

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद

१. सत्यार्थ प्रकाश (गुजराती)
२. ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका (गुजराती)
३. उपदेश मंजरी (गुजराती)
४. 'आत्म कथा' - म.दयानन्द (गुज.)
५. योगमीमांसा (हिन्दी, गुज., मल., कन्नड, उडिया, तेलुगु, अंग्रेजी)
६. सरल योग से ईश्वर साक्षात्कार (हिन्दी, गुजराती, तेलगु, अंग्रेजी)
७. योगदर्शनम् व्यासभाष्य व्याख्या सहित
८. ब्रह्म विज्ञान (हिन्दी, गुजराती)
९. अध्यात्म सरोवर (हिन्दी, गुजराती)
१०. आस्तिकवाद (गुजराती)
११. योग दर्शनम् (हिन्दी) सूत्रार्थ भावार्थ
१२. तत्त्वज्ञान (हिन्दी, गुजराती)
१३. क्रियात्मक योगाभ्यास (हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी)
१४. ईश्वरसिद्धि (हिन्दी, अंग्रेजी)
१५. आर्यों के सोलह संस्कार (हिन्दी, गुज.)
१६. सचित्र दार्शनिक निबंध (हिन्दी, गुज.)
१७. विवेक वैराग्य श्लोक संग्रह (हिन्दी, गुजराती)
१८. पीडित गौमाता के उपकार (हिन्दी, गुजराती)
१९. सत्योपदेश (हिन्दी)
२०. दुःख निवारणना भ्रामक उपायो (गुजराती)
२१. यजु. कठोपनिषद (गुजराती)
२२. आस्तिकवाद (गुजराती)
२३. मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय
२४. अष्टांग योग (हिन्दी, गुजराती)
२५. दैनिक संध्योपासना विधि-अर्थ सहित
२६. दैनिक यज्ञ विधि-अर्थ सहित (गुज.)
२७. योग दर्शन व्यासभाष्य सहित (गुज.)
२८. आपणां संप्रदायो (गुजराती)
२९. पर्यावरण प्रदूषण (हिन्दी, गुज., अं.)
३०. प्रेरक वाक्य (हिन्दी, गुजराती)
३१. आसन-व्यायाम (हिन्दी, गुजराती)
३२. सत्यार्थ प्रकाश की तेज धारायें (हिन्दी, गुजराती)
३३. अद्वैतवाद-एक विवेचन
३४. स्नातकों का परिचय तथा उपलब्धियाँ
३५. आयुर्वेदिक सरल उपचार
३६. भगवत्कथा (गुजराती)
३७. वैदिक वीरगर्जना (गुजराती)
३८. वैदिक भक्ति
३९. मनुस्मृति (गुजराती)
४०. ब्रह्ममेधा (हिन्दी)
४१. त्रिदेव निर्णय (गुजराती) एवं कैलेण्डर तथा पत्रक

मुख्य वितरक

आर्य रणसिंह यादव
द्वारा-डॉ. सद्गुणा आर्या
'सम्यक्', कर्मचारी सोसायटी के पास,
गांधीग्राम, जूनागढ़-३६२००१.